मेवाड़-गाथा ।

सिद्धान्त यह सीसोदियों का जानता संसार है :—
"जो टेक रखते धर्मकी, रखता उन्हें करतार है ॥

लेखक

पाण्डेय लोचनप्रसाद

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी ।

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के नरसिंह प्रेस में,

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित ।

सन् १९१७

दूसरी बार ५००

मूल्य ।)

"हो न क्यों सीसोदियों को घोर दुःख अनेक,
वे तजेंगे पर न अपनी राजपूती टेक।
प्राण देंगे हर्ष से वे पर न देंगे मान,
मान रक्षा धर्म है उनका पवित्र प्रधान॥"

श्री प्रताप वाक्य।

Published by Haridas Vaidya trading as
HARIDAS & Co.
201 Harrison Road, Calcutta.

समर्पण।

प्यारे ब्रजेश्वर,

किसी अभिमानी राजा तथा स्वार्थी विद्वान् या दुर्बल-हृदय वीर के हाथों में इसे समर्पण करने जाके अनादृत होते हुए आत्मग्लानि और मनस्ताप से अस्थिर होने की अपेक्षा, इसे लेकर तुम्हारे 'कमला-करकमल-कलानिधि', आनन्दामृत-मय अभय चरणों की सेवा में उपस्थित होना, क्या लक्षाधिक श्रेयस्कर और सन्तोषप्रद नहीं है?

धन-किंकर मनुष्य धन-हानि की व्यर्थ शंका से निस्स्वार्थ बन्धु-बान्धवों के निष्कपट व्यवहारों को भी कैसी विषमयी दृष्टि से देखा करता है! उसे यह हृदयङ्गम नहीं हो सकता कि 'धन' से इतर वस्तु अर्थात् प्रेम, स्नेह, दया, देश-भक्ति, जातिप्रीति, कृतज्ञता, उपकार, सहानुभूति, आत्माभिमान, आत्मप्रेम आदि धन की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं!! तो फिर इन धनदासों की कृपा-प्राप्ति के प्रयास में क्यों अपना व्यर्थ का उपहास कराना!! अस्तु।

यशोदाहृदय-नन्दन यह तुम्हारी प्राण-प्यारी ब्रजभूमि

भूषिता, सुरदुर्लभा भारतमाता के उन महावीर प्रताप* का वीर गान है जिनके 'आत्माभिमान' के बल से आज हिन्दूजाति का शीश ऊँचा है। क्या इसे स्वीकार न करोगे?

वाञ्छाकल्पतरु, तुम्हारे प्रिय भारत की वाञ्छा पूर्ण करो। क्लेशनाशिन्, इस भूमि के क्लेशों को हरण करके इसे सुख दो, शान्ति दो। जगन्नाटक सूत्रधार, भारत के वे दिन फिर लौटें। बस, यही प्रार्थना है।

तुम्हारा

लोचनप्रसाद ।

---

*Chester Macnaghten साहब ने महावीर 'प्रताप' सिंहका उल्लेख करते हुए काठियावाड़ राजकुमार कालेजके राजकुमार छात्रों से कहा है :—

Would you, in the hour of distress and poverty, be able to act with that noble dignity which characterised the great **pratap** of Mewar, who as even his adversary tells us, "lost wealth and land, but bowed not the head," who stooped to poverty, but never to disgrace, who showed himself, under the hardest of tests, to be the true knight, the true gentleman ?

वक्तव्य।

१

निज पूर्व पुरुषों के गुणों को भूल जो जाते नहीं,
तो आज हम इस भाँति पद-पद दुख अमित पाते नहीं।
पर इस समय निश्चेष्ट हो, समुचित नहीं रोना हमें;
आपत्ति में पड़, चाहिये कातर नहीं होना हमें॥

२

हम कौन थे? अब क्या हुए? यह सोच कर अपने हिये,
हमको हमारे दुर्गुणों पर रोष लाना चाहिये।
कर्त्तव्य अपना सोच के स्थिर लक्ष्य करना चाहिए,
फिर निज हृदय में शक्ति, साहस, शौर्य भरना चाहिये॥

३

करना ग्रहण निज पूर्वजों के सुयश के व्यापार का
है पतित देशों को सुनिश्चित मार्ग यह उद्धार का।
अतएव हम निज पूर्वजों के चरितका धारण करें,
करते हुए अनुसरण उनका, देश की दुर्गति हरें॥

४

निज पूर्वजों के चरित का जिसको नहीं अभिमान है
उस जाति का जीना जगत में मित्र! मरण समान है।
रखती सदा जो पूर्वजों के सद्गुणों का ध्यान है,
उस जाति का निश्चित समझ लो शीघ्र ही उत्थान है॥

श्री बिजया दशमी
सम्बत् १९६९
बालपुर

लोचनप्रसाद।

विषय-सूची ।

अथ श्रीमंगलाचरणम् ।

शिरस्यास्ति गंगा, शशी यस्य भाले,
शिवा यस्य बामांग-भागे विभाति ।
प्रिया—क्रोड़देशे च हेरम्बयुक्तं
भजे तं शिवं मंगलं मंगलानाम् ॥

मेवाड़-गाथा।

प्रस्तावना।

१ भूमि जिसकी शौर्य्य साहस शक्ति की शुचि खान है,
धैर्य्य दृढ़ता धर्म्म का जो पूज्य वासस्थान है,
सद्म* है वीरत्व का जो पद्म मानव धाम का,
है न किसको गर्व राजस्थान के शुभ नाम का ?
२ टङ्क गिरिमय देश वह मरुभूमि धारे अङ्ग में,
रत्त है वर क्षत्रियोचित रीति रति के रङ्ग में।
—हिन्दुओं ही का न, वह संसार का हिय-हार है।
मर्त्य-भू में अप्रतिम अमरत्व का आगार है।

* सद्म—सदन, घर।

३ अर्वली गिरिवर जहाँ निज शीश नित ऊँचा किये,
दे रहा शिक्षा सभी को धर्म-दृढ़ता के लिये।
पुण्य पुष्कर सर जहाँ नर पाप ताप विनासता,
वीर क्षत्रिय-वंश की वर विमलता देता बता॥
४ विविध नद नदियाँ जहाँ बहती हुई अभिमान में,
मातृ-भौमिक-भक्ति की धारा बहाती प्राण में।
कर रहे "झरझर" जहाँ निर्झर मनोहर नाद हैं,
भर रहे युग-कर्ण में स्वातन्त्र्य-सुख का स्वाद हैं॥
५ उस रसा† में एक जो मेवार नामक ठौर है,
वह गुणों की खान राजस्थान का सिरमौर है।
और उस सिरमौर का भी पूज्य पद चित्तौर है,
स्थान इस भू-लोक में जिसके समान न और है॥
६ नाम जिसका श्रवण कर उत्साह छाता अङ्ग में
नाच उठता है हृदय आनन्द और उमङ्ग में।
नाम के गुण की कथा संसार में प्रख्यात है;
नाम ही से वस्तुओं के धर्म होते ज्ञात हैं॥
७ वीरता मिश्रित सुखद जल वायु जिसका है महा
भीरु को भी जो सहज निर्भीक कर देता अहा!
पूज्य रेणु स्पर्श जिसका पूर्व गर्व विधान में,
जाति के अभिमान की ज्वाला जगाती प्राण में॥
८ वन्दनीया है जहाँ के पूर्व गौरव की कथा,

† रसा—भूमि।

प्राण देकर भी विमल निज मान रखने की प्रथा।
शुचि स्मृति जिसकी हृदय को मातृ-भौमिक-भक्ति से,
पूर्ण करती अतुलनीया दिव्य वैद्युत शक्ति से॥
८ वृद्ध वनिता बाल रखते ध्यान अपने मान का,
मोह कुछ रखते न वे निज देह अथवा प्राण का।
नष्ट हो सर्वस, न पर वे त्यागते निज धीरता,
ध्येय उनको मुख्य होती देशकी स्वाधीनता॥
१० गेह धन खो, नित्य चाहे विपिन में फिरना पड़े,
नित्य ही पद पद व्यथा दुख गर्त्त* में गिरना पड़े,
हार उनका दृढ़ हृदय तो भी कदापि न खायगा,
अग्नि-ज्वाला तुल्य ऊपर को सदा ही जायगा॥
११ देश गौरव रक्षणार्थ सचेष्ट रहते हैं सभी,
नाम फिर उनका कलङ्कित क्या कहीं होगा कभी!
पुत्र, दुहिता, भ्रात, सब सङ्गीत यह गाते सदा:—
"देश-बलि के सामने है तुच्छ सारी सम्पदा!"
१२ शौर्य्य साहस देख जिनके शत्रु कहते "धन्य है,
"वीरता में विश्व में तुमसा न कोई अन्य है।"
छल रहित यह वीरता संसार में आदर्श है,
सद्गुणों का धाम पूज्य पवित्र भारतवर्ष है॥
१३ है सुसार्थक मित्र! सबला नाम अबला का यहीं,
नारियाँ मेवार की सी क्या गई पाई कहीं?

* गर्त्त—गड्ढा।

आत्मगौरव ज्ञानपूरित अटल जिनमें स्फूर्त्ति है,
विषय विषमय विश्व मध्य सतीत्व की जो मूर्त्ति हैं॥
१४ ध्यान जिनको मान का सब काल एक अपाण है,
प्राण से भी प्रिय जिन्हें निज देश का कल्याण है।
शीश कटने तक नहीं जो त्यागते धनु बाण हैं।
वीर धीर गँभीर यों मेवार की सन्तान हैं॥
१५ कोप से दुर्दैव के जब आपदा आती बड़ी,
दुर्ग-द्वारों पर भयानक मृत्यु हो जाती खड़ी,
पहन केशरिया वसन वीराग्रणी सीसोदिया
तब विदित वीराग्रहण को हर्षयुत करते क्रिया॥
१६ देख कर वीराङ्गना पति पुत्र अन्तिम काल को,
भूल जाती हैं जहाँ को, खोय तनु के हाल को।
हर्षयुत अगणित अनल के कुण्ड रच भीषण बड़े,
मृत्यु को भी जो कँपा देतीं सगर्व खड़े खड़े॥
१७ अग्रगण्या वीरकन्या सोहतीं घर घर जहाँ,
क्यों न हो आवास फिर वीरत्व का बोलो वहाँ?
दुधमुँहे बच्चे जहाँ पैतृक-सुधर्म-विधान में,
खेल जाते खेल अपने प्राण से अभिमान में॥
१८ तत्व शुचि अमरत्व का भरती हुई हृद-सद्‌ममें,
जननि कहतीं जहाँ दे कर खड़्ग सुत-कर-पद्ममें,
"जा समर में वत्स! रिपु-सिर काट ला कुल रीति से;
काट ला रिपु-शीश या कर मृत्यु चुम्बन प्रीति से॥"

१९ हाथ में दे शूल निज पतिके जहाँ पत्नी कहा !
बोलती यों विधुवदन से वीर-वचनामृत बहा :—
"भीरु अबला की विनय यह नाथ ! भूल न जाइयो
शत्रु-कुल को पीठ दिखला, लौट गेह न आइयो ॥"

२० देखना हो जो कहीं आदर्श आत्मत्यागका,
सत्य, शुचि, स्वातन्त्र्य-प्रियता, देशके अनुराग का,
मित्र ! तो करते हुए दृढ़ पाश निज विश्वास का,
पृष्ठ कोई खोल लो मेवार के इतिहास का ॥

आत्म त्याग।

१ वीरभूमि मेवाड़ आर्य-गौरव-लीलास्थल,
अतुल जहाँ के शौर्य्य, जाति-अभिमान, वीर्य, बल !
है सतीत्व सद्धर्म का, जो पवित्र आगार
गाता जिसका सुयश है, नित सारा संसार
अमित आनन्द से ॥

२ शुचि स्वदेश-वात्सल्य, सत्य-प्रियता, सहिष्णुता,
आत्मत्याग, श्रम, शक्ति, समर-दृढ़ता, रण-पटुता,
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता अखण्ड
करती है जिस भूमि को, उज्वल भारतखण्ड
अखिल भू-लोक में ॥

३ है आदर्श अनूप जहाँ की सुयश कहानी,
पाती जिससे सहज अमरता कवि की वाणी।
शुभ्र कीर्त्ति मेवाड़ की, कर सगर्व कुछ गान
आज लेखनी! अमरता, कर ले तू भी प्राप्त,
जन्म सार्थक बना ॥

४ एक समय सानन्द राज्य का शासन करते,
निर्भय रख गो-विप्र प्रजागण के मन हरते,
वीर भूमि मेवाड़ में सज्जन, सत्य-प्रतिज्ञ,

राजसिंह राणा प्रवर थे भूपति वर विज्ञ
शान्ति सुख से मज्ञ ॥

५ भीमसिंह जयसिंह नाम के बली धुरन्धर,
राजसिंह के पुत्र गुणी थे दो अति सुन्दर।
यमज भ्रात थे वे उभय, पितृभक्त सुखसार
भीमसिंह पर ज्येष्ठ थे, जन्म-काल-अनुसार
अतः कुल पूज्य थे ॥

६ धर्मनीति अनुसार राज्य-पद के अधिकारी,
भीमसिंह थे स्वयं पिता के आज्ञाकारी।
ज्येष्ठ पुत्र ही को सदा, निज पैतृक व्यवहार
राज काज इम सकल में, मिलता है अधिकार,
न्याय की दृष्टि से ॥

७ भीमसिंह से किन्तु किसी कारण वश नृपवर
रहते थे अति खिन्न चित्त में स्वीय निरन्तर।
पाप-मूल कुविचार मय, दुष्ट द्वेष की दृष्टि
करती कब किस ठौर में, है न भिन्नता सृष्टि,
कहो हे पाठको !

८ इसी भाव से भूप-हृदय थी इच्छा भारी,
लघु सुत को दे राज्य, बनाना उसे सुखारी।
न्यायी भी अवसर पड़े, न्यायान्याय विसार,
फँस जाते अन्याय में, पक्षपात उर धार
अन्ध बन मोह से ॥

८ नृप ने अपने हृदय बीच यह नहीं बिचारा
एक दिवस यह घोर कलह का होगा द्वारा
भाई भाई से कहीं, हितू न अन्य, प्रधान
प्रीति गई तब भ्रात सम, शत्रु न कोई आन
सदा की रीति यह ॥

१० रानी कमलकुमारी ने यह बात सुनी जब,
ऊँच नीच बहु भाँति सुझाया राणा को तब।
देख महा अन्याय भी, कहें न कुछ जो लोग,
क्या न दुष्ट प्रत्यक्ष वे, देते उसमें योग,
धर्म के न्याय से ॥

११ अस्तु, नृपति ने पक्षपात की बात बिसारी,
करने लगी तथैव सोच निज क्षति पर भारी।
सहसा करते कार्य जो, बन करके अज्ञान
है केवल उनका सदा, पश्चात्ताप निदान,
सत्य यह मानिए ॥

१२ अन्य दिवस भय, लाज, दुःख से अमित सताया
भीमसिंह को सम्मुख राणा ने बुलवाया।
चला भृत्य प्रमुदित हिए, नृप आज्ञा अनुसार
उलझा विविध विचार में, लाने राजकुमार
तीर के वेग से।

१३ भीमसिंह अवलोक दूत को स्मित-आनन में,
करने लगे विचार अनेकों अपने मन में:—

"हरे २ कैसी हुई, नई बात यह आज,
पड़ा भूप का कौन सा, ऐसा मुझसे काज,
बुलाया जो मुझे ॥

१४ दे जयसिंह को राज्य-भार सब क्या राणा ने
मुझे बुलाया आज अनुज का दास बनाने !
नहीं २ मुझको कभी, है न सह्य अपमान
इष्ट नहीं है दासता, भले जाय यह प्राण
सहित शुचि मान के ॥

१५ पराधीन हैं, उन्हें जन्म भर दुख है नाना,
प्राप्त कहाँ स्वातन्त्र्य-सौख्य उनको मनमाना !
जब तक है मम हृदय में, स्वतन्त्रता की भक्ति
जब तक है युग हस्त में, खड़्ग-ग्रहण की शक्ति
न हूँगा दास मैं ॥

१६ मरजाऊँ या विजय-पताका अचल उड़ाऊँ,
है धिक् जो रण बीच शत्रुको पीठ दिखाऊँ ।
एक बार यमराजसे भी यथार्थ वर वीर
लड़नेसे रणमें कभी, होते नहीं अधीर ।
बात फिर कौन यह !

१७ इसी भाँति बहुकाल पड़े अति शङ्कालय में,
भभक उठी क्रोधाग्नि विषम युवराज हृदय में ।
नयन युगल विकराल, मुख बाल-भानु सम लाल,
विकट रूप धारि प्रकट, यथा निकलती ज्वाल
अङ्ग प्रत्यङ्गसे !

१८ कहा भृत्यसे वचन उन्होंने फिर भय खोके
हृदय-क्षेत्रमें विमल बीज वीरोचित बोके :—
"जाऊँगा न कदापि मैं, अब राणाके पास
व्यर्थ करानेके लिये, अपनाही उपहास
खबर यह जा सुना ॥"

१९ हुई शान्त क्रोधाग्नि अन्तमें जब कुछ क्षणमें
भीमसिंहने तनिक विचारा अपने मनमें,
जानेमें है हानि क्या, ग्लानि तथा भय, लाज
चल देखूँ तो क्या सुझे, कहते हैं नृपराज
भला वह भी सुनूँ।

२० यही सोच कर भीमसिंह मनमें रिस लाये,
राजसिंह नृपराज निकट तत्क्षण ही आये।
किन्तु हुए विस्मित महा, देख दशा कुछ अन्य
बैठे हैं राणा प्रवर, चिन्तित चित्त अनन्य
शीश नीचा किये ॥

२१ दशा देख यह भीमसिंहने अचरज माना,
तथा गूढ़ वृत्तान्त भूपके मनका जाना।
अस्तु, हो गया अन्तमें, बोध उन्हें भरपूर
शान्ति हुई सब भ्रान्तिकी, क्रोध ज्वाल हो दूर
हृदय-आगारसे ॥

२२ अब राणाने भीमसिंहको देखा सम्मुख
कहा "वत्स प्रिय भीमसिंह! कर नीचेको मुख।

सुन कर यह करुणा भरी, भूपति वरको बात
भीमसिंह अति चकित हो, बोले कम्पित गात
"पिताजी ! हाँ, कहो"

२३ मधुर बात कर श्रवण पुत्रकी अचरज मानी,
कहो नृपतिने पुनः सँभल करके वर बाणी।
"प्यारे सुत ! धिक् है मुझे, मैंने तुमसे हाय !
मोह-जड़ित चित भ्रमित हो, किया बड़ा अन्याय
स्वीय अविचारसे॥

२४ सुनते ही निज पिता वचन सब संशय-मोचन
हुए अश्रुमय भीमसिंहके दोनों लोचन।
किया उन्होंने चित्तमें, अपने यह अनुमान
अब राणाके हृदयका, मिटा पूर्व-अज्ञान
दयासे ईशकी।

२५ राणाने फिर कहा "पुत्र ! अब रहो अचिन्तित
करो न पश्चात्ताप हुई होनी उसकी हित।
भीमसिंह ! सच मान लो, राज्यासन अधिकार
देऊँगा कल मैं तुम्हें, न्याय नीति अनुसार
छोड़ सब भिन्नता।

२६ "एक बात पर बड़ी कठिन आ पड़ी यहाँ है।
प्रकट भयङ्कर खड़ी कलहकी जड़ी यहाँ है।
जयसिंहका जिस वस्तु पर, है न लेश अधिकार
समझ रहा है वह उसे, स्वीय गलेका हार
हाय ! मम भूलसे॥

२७ "यदि निराश हो जाय आज वह एकाएकी
खड़ा करेगा विघ्न-विषम बन कर अविवेकी
दोनों दलके समरमें, अगणित बिना प्रमाण
तुरत व्यर्थ हो जायँगे, कितनों ही के प्राण
इसी अज्ञान से।

२८ "मूल प्राय यह बात हृदयमें मम गड़ती है।
नहीं एक भी युक्ति सूझ मुझको पड़ती है।
एक जनके हित निहत हों यदि लाखों, हाय
कहो कहो यह है न क्या वत्स! घोर अन्याय?
धर्मकी रीतिसे।"

२९ सुनी बात यह भीमसिंहने नृप मति जानी
तथा चित्तमें नृपति-न्याय निष्ठा अनुमानी।
चरण निकट रख खड्ग निज आँखोंमें भर नीर
पितृ प्रेम लख मुग्ध हो बोला यों वह वीर
अमृत मानो चुआ॥

३० "चिरञ्जीव जयसिंह अनुज मेरा अति प्यारा
सुख दुखमें आधार सदा सर्वत्र सहारा।
दे सकता उसके लिये, मैं हूँ अपने प्राण
तुच्छ राज-पद दान फिर, है क्या बात महान
उचित सम्मान से?

३१ "यद्यपि कुमति-प्रलिप्त लोभ-वश होकर अन्धा

उसने मेरे लिये रचा है गोरखधन्धा
एक प्राण, दो देह से, थे हम दोनों भ्रात
आज भिन्नताका हुआ, भीषण वज्राघात
कपटके व्योमसे।

२२ "दुनियामें है तात! जिन्दगी है दो दिनकी
हुई भलाई कहाँ लड़ाईसे किन किनकी?
करता है जयसिंह क्यों, व्यर्थ कलहका काम?
भ्रातृ-प्रेमसे रिक्त है, क्या उसका हृद्धाम?
धर्म जो तज रहा।

२३ "भक्ति युक्त जयसिंह माँग ले कपट विसारे
देता हूँ मैं शीघ्र, प्रेमसे, उसे उतारे
पर जो वह अन्यायसे, त्यागेगा कुल-रीति
ग्रहण करूँगा मैं अहो! पाण्डव-गणकी नीति
न्यायकी भीतिसे॥

२४ "दिया आपने राज्य, हर्ष-पूर्वक लेता हूँ।
जयसिंहको फिर वही मुदित हो मैं देता हूँ।
कथन आप यह लीजिये, सत्य सत्य ही मान
होगा कभी न अन्यथा, मम प्रण विकट महान
अचल है सर्वथा।

२५ "त्याग राज्य चिर-ब्रह्मचर्य-व्रतमें रत हो के
हरी भीषने व्यथा पिताकी शङ्का खोके।

तज कर निज तारुण्यको, पुरु ने, धन्य, समर्थ !
लिया जराको मोदसे, पूज्य पिताके अर्थ
जान कर्त्तव्य निज ।

३६ "रामचन्द्रने स्वयं पिताकी आज्ञा मानी,
लिया गहन वनवास तुच्छ सुख-सम्पति जानी ।
जो न पिता-आज्ञा करूँ पालन किसी प्रकार,
तो मुझको धिक्कार है, बार बार शत बार
जन्म मम व्यर्थ है ।

३७ "यदि रहनेसे यहाँ कदाचित मेरे मनमें
राज्य-लोभ हो जाय कहीं सहसा कुक्षण में ।
इस कारण यह लीजिए तज कर मैं घर द्वार
छोड़े देता हूँ अभी, मातृभूमि-मेवार
जन्म भरके लिये ॥"

३८ इतना कहकर भीमसिंह निज प्रण-पालन-हित
शान्त-भावसे भक्ति-युक्त हो अति प्रमुदित चित
कर प्रणाम नृपराजको, धारे हिए उमङ्ग
छोड़ राज्य वह चल पड़े, कुछ अनुचरके सङ्ग
कहीं बाहर अहा !

३९ बाहर जाते हुए फिर मुँह भीमसिंहने
मातृभूमिको निरख नयन भर लाये अपने ।
कही बात जो उन्होंने, उस अवसर पर मित्र !
श्रवण योग्य वह सर्वथा, है स्मरणीय पवित्र
सुधा सींची हुई !

४० "धर्मबद्ध हो जननि! आज तुझको तजता हूँ
"निश्चिन्तित हो दिव्य—दीनता मैं भजता हूँ।
"किन्तु मृत्यु-पर्य्यन्त भी, मा! मेरे ये प्राण
"रक्खेंगे गौरव सहित, मातृभूमि का ध्यान
अमित अभिमानसे।

४१ "स्वाधीनता अखण्ड, विमल बल विक्रम तेरे
"जावेंगे अन्यत्र हृदयसे कभी न मेरे
"अस्तु, विनय अन्तिम यही, तुझसे अम्ब! समक्ति
"दे निज प्रति सन्तानको आत्मत्यागकी शक्ति,
धैर्य दृढ़ता सनी!!"

४२ बीता जब कुछ काल, भीमसिंहके सब साथी
आये अपने देश लौट, ले घोड़े हाथी।
भीमसिंह पर लौट कर, आये नहिं हा हन्त!
आया तो आया मरण-समाचार ही अन्त
लौट उस वीरका

४३ धन्य धन्य हे भीमसिंह! प्रणके अनुरागी
सज्जन, सत्य-प्रतिज्ञ, विज्ञ, त्यागी बड़भागी!
धन्य आपका प्रण तथा, आत्म-त्याग, आदर्श
धन्य धर्म-दृढ़ता तथा, भ्रातृ-प्रेम-उत्कर्ष
धन्य तव धीरता!

४४ भीमसिंहसे बन्धु चार छै हों यदि, प्रियवर!
छा जावे सुख-शान्ति देशमें तब तो घर घर॥

देख, नव्य-भारत! ज़रा, भ्रातृ-प्रेमका चित्र
ले कुछ शिक्षा ग्रहण कर, यह सङ्गीत पवित्र
गान कर मोदसे॥

४५ भीमसिंह! है धन्य आपके शुचि स्वदेशको!
धन्य आपकी विमल हृदयके बल अशेषको!
धन्य आपके भवनको, धन्य आपकी अम्ब!
जुग जुग जगमें रहेगा, यह तव कीर्त्ति-कदम्ब।
अमर तव नाम है!

४६ जगमें लाखों मनुज जन्म लेते मरते हैं;
तनु-पोषणके लिये विविध लीला करते हैं।
पशु सम जन्म मनुष्यका, हो जाता है व्यर्थ
जो रहते हैं अन्ध बन, निज सुख-साधन-अर्थ
अर्थके दास हो।

४७ धर्म-धारमें धैर्य सहित नर जो बहते हैं।
चिरजीवी हो वही जगतमें नित रहते हैं।
होते हैं जो रत सतत, बन्धु-कुशलता-हेतु
अमर वही हैं नर-प्रवर सौख्य-सेतु कुल-केतु
मर्त्य इस लोकमें।

४८ स्थिर हो जगमें कौन सदा रहता है भाई।
फिरती कहाँ न कहो मृत्युकी दुखद दुहाई?
क्षण क्षण भङ्गुरता विषम, दिखा रही है सृष्टि,
देख, अरो हे भाइयो! खोल हृदयकी दृष्टि
ग्रहण उपदेश कुछ॥

४९ दुर्लभ है नर-देह इसे मत वृथा गँवाओ,
पा साधनका धाम, विषयमें मत लिपटाओ।
जब कर सकते किसीका, तुम न लेश उपकार;
करते हो क्यों मूढ़ बन, तो पर का अपकार
स्वार्थसे लिप्त हो॥

५० भङ्गुर है यह देह, चार दिनका है जीवन,
करो न कलह-कलङ्क-पङ्कसे अङ्ग विलेपन।
त्यागो विष सम भाइयो! फूट, द्वेष, छल, क्रोध,
रहो प्रेमसे सुख सहित, तज कर बन्धु विरोध।
सदा फूलो फलो!!



दुर्ग-द्वार ।

१

रात्रिमें भी त्याग कर भय खोल रखना दुर्ग-द्वार,
है कहाँ देखी गई निर्भीकता ऐसी अपार !!
विश्व में इस श्रेष्ठता का पात्र है वह जाति कौन ?
हो रहा इस प्रश्नसे सारा जगत क्यों आज मौन !!

२

यह कहाँ से आ रहा है हर्ष कोलाहल गभीर ।
धन्य भारतवर्ष तू है ! धन्य तेरे आर्य्य-वीर !!
धन्य है मेवार की पावन धरा महिमा-मयङ्क !
धन्य है सीसोदिया-कुल स्वाभिमानी निष्कलङ्क !!

३

उलट देखो जगत के इतिहास के पन्ने तमाम,
इस तरह की वीरता के आप पाओगे न नाम ।
हम कहाते हैं अहो ! जब सभ्यता-गुरु पूज्य आर्य्य,
चाहिये इस भाँति ही होने हमारे श्रेष्ठ कार्य्य ॥

४

जब हुए निज तात साँगा जी समान बली महान,

और उनके समय राणा रत्नसिंह* प्रतापवान,
मित्र बाबर, और सुचतुर मालवा के बादशाह,
उस समय थे चाहते दोनों उन्हें करना तबाह॥

५

उस समय जब दो विधर्मी प्रबल पैतृक रिपु प्रसिद्ध
चाहते बल छल सहित हो सतत करना कार्य्य-सिद्ध।
किस तरह निश्चिन्त हो वह प्रतिद्वन्द्वी देश हाय!
मान-रक्षा-हेतु अपने वह करेगा क्या उपाय?

६

सोच कर यह आज भी हम भय-विकल होते विशेष
किन्तु ऐसा समय देता वीर को है और त्वेष†।
मत्त‡करिवर वृन्द का सुनकर जलद गम्भीर घोष,
सिंह-शावक का सहज ही द्विगुण क्या होता न रोष?

७

पाठको! सुनिये स्वयं राणा कथित उनकी सुकीर्त्ति,
पूज्य अपने पूर्व पुरुषोंके विमल गुणकी सुकीर्त्ति।
श्रवण करके देख लो क्षत्रिय जनों की दिव्य-शक्ति,
धैर्य्य, धार्मिकता, प्रजा-वात्सल्य, साहस, देशभक्ति॥

८

कुछ न कर परवाह अपने शत्रुओं का साभिमान,

---

* १५३०—१५३५

† त्वेष = जोश ‡ हाथी

प्रकट करते शौर्य्य, साहस, धीर राणा वीर्यवान,
कर रहे आदेश अपने शूरवीरों को अमन्द
"रात्रिमें भी हो कभी चित्तौरका फाटक न बन्द!!"

९

मैं नहीं हूँ भीरु या निर्दय प्रजा-पीड़क-अनार्य्य!
फिर न मैं क्यों कर सकूँगा क्षत्रियोचित दिव्यकार्य्य।
बिमल क्षत्रिय वीर्य्य से सम्भूत है मेरा शरीर,
मृत्यु को भी सामने लख मैं नहीं होता अधीर॥

१०

प्रजा-पालन में नहीं जो भूप गण होते समर्थ,
या जिन्हें रहता बना भय शत्रुओं का नित्य व्यर्थ,
बस, उन्हीं को बन्द करना चाहिये निज दुर्ग-द्वार,
बस, उन्हींको चाहिये करनी सदा चिन्ता अपार॥

११

विषम भय मेरा सदा मम शत्रुओं को है विशेष
लेश न कि उनका मुझे, इसमें नहीं गर्वोक्ति लेश।
प्रजाके हित-हेतु मैंने कर दिये हैं प्राण-दान,
फिर रखूँ क्यों द्वार अपने बन्द करने का विधान!!

१२

वीर तुम मेरी प्रजा, मेरा क़िला हो एक मात्र,
कवच है मेरा सुदृढ़,बस,यह तुम्हारा बिमल गात्र।
है मुझे विश्वास दृढ़ तुम पर,सकल तुम हो सुपात्र,
है तुम्हारे हाथ में यश-अमरता का पूर्ण-पात्र॥

१३

क्षत्रियो, मेवार-वासी वीर मेरे बन्धु-वर्ग !
बस, तुम्हारे विमल बल से हो रहा चित्तौर स्वर्ग !!
पूर्वजों की मान-रक्षा है तुम्हारे हाथ आज,
बन्धु रक्खो या डुबा दो हिन्दुओं की सकल लाज ॥

१४

सौंप मुझको तात इस मेवार-भू का राज्य-भार,
स्वर्गवासी हो गये सत्कीर्त्ति पा सर्व प्रकार ।
क्षत्रियो ! अब रत्नसिंह महीप को करते कृतार्थ
मातृभू की मान-रक्षा की शपथ लो, त्याग स्वार्थ ॥

१५

देव-दुर्लभ वीरतायुत धीरता की पुण्यभूमि !
स्वर्ग से भी अधिक प्रिय, स्वाधीनता की पुण्यभूमि !
मातृभूमि ! प्राण यह क्या वस्तु हैं तेरे समक्ष ?
उऋण तुझ से हम नहीं होंगे, यदपि लें जन्म लक्ष !!

१६

है हमें धिक्कार यदि तुझ से निवाहें हम न नेम ।
है हमें धिक्कार यदि तुझ से न रक्खें विमल प्रेम ॥
प्राण, तन, मन, धन तुझे मेवार ! है अर्पित सभक्ति ।
दे हमें तेरी अलौकिक मान-रक्षा हेतु शक्ति ॥

आदर्श-राजभक्ति

अर्थात्

आत्मबलि।

१

विजय शोलापूर को कर मानसिंह महीप आज,
राजधानी लौटते हैं साथ ले सेना-समाज।
*अनी वह चतुरङ्गिनी उनकी कँपाती दश दिशा,
आ रही है यह बनाती दिवस को देखो निशा॥

२

महाराजा का इन्हें पद शाह अकबर से मिला,
यह किसी की जड़ निमिषमें हैं अहो! सकते हिला।
राह में ये वीर हो कर सदल प्रेरित आप से,
गये "कुम्भलमेर" थे मिलने प्रसिद्ध प्रताप से॥

३

धीर वीर प्रताप से मिलकर महाराजा लखो,
आ रहे दिल्ली बजाते वीर रण-बाजा, लखो।
लख इन्हें दर्शक भले ही यह कहें, "नृप मुदित हैं":
आत्मग्लानि परन्तु इनमें क्रोध दुखयुत उदित है॥

---

* सेना।

४

शाह अकबर के निकट वे जा लगे यों बोलने,
तरुण "कुचले में लगे महुरा कुपित हो घोलने :—
"है किया अपमान मेरा प्रकट भूप प्रताप ने।
"प्राण दूँगा जो लिया बदला न इसका आपने॥"

५

शीश दुखने का बहाना दिखा मद भर कर हिये
वह न बैठा साथ मेरे हाय! भोजन के लिए।
सविधि पगड़ी पर चढ़ा कर अन्न देव विशुद्ध को
छोड़ना मुझको पड़ा भोजन किये बिन क्रुद्ध हो॥

६

चलते हुए मैंने कहा आते उन्हें अवलोक के
अपमान से सम्भूत भीषण क्रोध को कुछ रोक के।
"मर्दन किया जो इस तुम्हारे मान का मैंने नहीं,
"तो नाम मेरा मानसिंह नहीं, प्रतिज्ञा है यही॥

७

"हमने किया जो कुछ उसी से यह प्रतिष्ठा है बनी,
स्थिर विभव है वह यों तुम्हारी धर्मनिष्ठा है बनी।
पर कर सकोगे राज्य अब राणा न तुम इस देशमें,
जो वीर हो तो यों बने रहियो विपद में, क्लेश में॥

---

* कुचला एक विष-फल है। उसमें महुरा (विष) घोलना अर्थात् अत्यधिक-विषमय बनाना।

८

उत्तर मिला "अबकी कभी जब आप फिर आवें यहाँ,
"निज पूज्य अकबर तुर्क को भी साथ में लावें यहाँ।"
ऐसी हँसी है की गई है शाह ! देखो आपकी
है अल्प ही सब, जो प्रतिष्ठा ली गई न प्रतापकी ॥

९

लख शाह अकबर पूर्वसे सीसोदियोंकी सम्पदा,
मेवाड़को आधीनमें थे चाहते करना सदा।
वह जल उठे निज पूज्य सेनापति-सुमति अपमानसे
देने लगे आदेश मानों विद्ध हो कर वाणसे ॥

१०

सेना असंख्यक है महाराजा! सजाओ तुम अभी,
सीसोदियाकी जाति-मदका फल चखाओ तुम अभी,
ले साथ निज युवराज वीर सलीमको जाओ वहाँ,
मेवाड़को विध्वंस कर जय-केतु फहराओ वहाँ ॥

११

देर थी आदेश ही की सज गये योद्धा सभी,
था न ऐसा जोश शूरोंमें गया देखा कभी।
मान के अपमानका बदला चुकानेके लिये
यवन सेनाने कुपित हो विविध प्रण भीषण किये ॥

१२

भेंट दोनों रिपु दलोंकी थी हुई जिस स्थानमें,

नाम उसका त्वेष लाता क्षत्रियोंके प्राणमें।
सुप्रसिद्ध पवित्र हलदी घाटकी पावन धरा,
विमल तेरे नाममें है कुछ अजब जादू भरा॥

१३

शौर्य्य, साहस, वीर्य्य, बल, निर्भीकता, वर वीरता,
स्वामिभक्ति, स्वदेशप्रेम, स्ववंशनिष्ठा, धीरता,
धर्म्म-रक्षा हेतु उज्ज्वल आत्मबलि, विक्रम तथा
पुण्य लीलास्थली तू है इन गुणोंकी सर्वथा॥

१४

शक्ति तुझसे प्राप्त कर निज स्वामिरक्षा के लिए
आत्म-अर्पण अमित वीरोंने किये प्रमुदित हिए।
"सुयश तेरा गा सकूँ" ऐसी न मुझमें शक्ति है।
हेतु मेरी धृष्टता का विमल तेरी भक्ति है॥

१५

आज मैं सरदार झाला मानसिंह उदारकी
हूँ सुनाता वृत्त अद्भुत आत्म-बलि-व्यापारकी।
बादशाही फौज अगणित एक ओर सशस्त्र है
एक ओर प्रतापकी सेना द्विविंश सहस्र है॥

१६

मानसिंह महीप और सलीमकी उत्साहसे
लड़ रही है यवन-सेना रण विजयकी चाहसे।

इधर क्षत्रिय वीर हैं "जय एकलिङ्ग" पुकारते
यवन-सेनाको भयानक रूपसे संहारते॥

१७

इस युद्धमें प्रकटित किया विक्रम अपूर्व प्रतापने,
क्षण कालमें रिपु-सैन्य संहारे असंख्यक आपने।
लेकर दुधारा खड्ग करमें चपल चेतक पर चढ़े
वे कल्किके अवतार सम उस यवन-सेना पर बढ़े॥

१८

राजपूतोंकी अतुल बल वीरता को देखके,
शौर्ययुत उनकी अगम रण-धीरताको देखके।
"धन्य है सीसोदियोंकी" शाहजादेने कहा
"धन्यवीर प्रताप! तेरा जन्म है सार्थक अहा"!

१९

हेतु जो इस विकट रणका मानसिंह नरेश था,
लक्ष्य राणाका उसीसे युद्ध-हेतु विशेष था।
पर मिले वह मान उनको खोजने पर भी नहीं
देख राणाका पराक्रम जा रहे पीछे कहीं॥

२०

तब दिव्य नीले वर्णके निज अश्व चेतकको फिरा,
नृपने बढ़ावा दे उसे कह वीरता-पूरित गिरा।
उस ओर छोड़ा शाहजादेका जहाँ हाथी रहा
वीरत्वक सोता प्रखरतर राजपूतोंमें बहा॥

२१

शाहजादे के रहे जो देह-रक्षक वीर वे।
सामने राणा प्रवरको देख हुए अधीर वे।
वार राणा पर लगे करने पुनः वे मिल सभी
सिंहकी गति श्वानगणसे क्या गई रोकी कभी ?

२२

काट कर योद्धा अनेकों शाहजादेके निकट
पहुँच ही राणा गए रण दृश्यको करते विकट।
वीर अपने मार्गमें लख विघ्न रुकते हैं नहीं।
वज्र जो गिरता गगनमें वह न रुकता है कहीं॥

२३

वे गजारूढ़ सलीम हैं, ये हयारूढ़ प्रताप हैं।
ये कर रहे आघात, रक्षा कर रहे वे आप हैं।
है एक अपना पैर हाथी पर रखे चेतक खड़ा
हैं देखते राणा सकोप सलीमको भाला बढ़ा॥

२४

आघात भाला का हुआ बखतर तने जब देह में
मूर्छित सलीम हुए सभय तब मृत्यु के सन्देह में।
फौलाद से पूरा मढ़ा होता न हौदा जो कहीं
बचते कदापि सलीम फिर तो गोर जाने से नहीं।

२५

दौड़े यवन लख शत्रु से निज शाहजादे को घिरा

चाहा उन्होंने "भूमिपर दे' अश्व से रिपु को गिरा।"
पर वे सके वैसा न कर मारे गए उलटे वहीं,
तोभी यवन-सेना पराक्रम अतुल दिखलाती रही॥

२६

जयवार उनने काट मुगलों को प्रखर तरवार से,
निज निकट के भू को किया रिपु रहित सब प्रकारसे,
पर जोश में थे यवन ऐसे वे न उनको कुछ डरे,
आक्रमण राणा पर किये जाते रहे धीरज धरे॥

२७

राज छत्र पवित्र उनके शीश ऊपर देख के
यवन उत्तेजित हुए राणा उन्हें ही लेख* के।
यवन एकत्रित हुए रण-शक्ति साहस से मढ़े
पकड़ने या मारने के हेतु उनको वे बढ़े॥

२८

छै घाव भाले और असि के भूप पर आए वहाँ,
थी एक गोली भी लगी तन में व्यथाकारक महा।
चिन्ता न करके लेश उनको वे दिखाते वीरता
थे चूर्ण करते यवन सेना की सभी रण-धीरता॥

२९

हा! अन्तमें दल मुगलगण का अधिक ही बढ़ता चला,
यों घिर गए राणा वहाँ, घन से यथा शशि की कला।

*सोच के

ऐसे अड़े इस समयपर सरदार झाला मान ने*
कर्त्तव्य निज पाला कठिन वीरत्व साहस से सने॥

३०

निज प्राण देना ठान अपने भूपके हित प्रेम से,
मेवाड़ का मङ्गल समझ राणा प्रवर के क्षेम से,
वह राजछत्र प्रताप के शिर से तुरन्त उतार के,
आगे हुए उस छत्रको निज शीश ऊपर धारके॥

३१

कौशल सहित फिर भेजकर के भूप को वनभूमिमें
वह सिंह तुल्य लगे कुपित हो गरजने रणभूमि में।
रण-अग्नि हा! हा! जल उठी अति उग्रतासे फिर वहाँ
होने लगा "मारो, धरो" का घोर कोलाहल महा॥

३२

हा! इधर चेतक पर चढ़े राणा वहाँ से जो बढ़े,
जाते अकेले देखकर उनको व्यथा चिन्ता मढ़े,
दो मुगल सेना के सवारों ने उन्हें पीछा किया।
यह हाल राणा को न पर कुछ जानने उनने दिया॥

३३

दिन भर थका था अश्व चेतक, फिर हुआ घायल रहा,
तो भी रुका न कहीं रहा यों पराक्रमशाली।

*सादड़ी के सरदार झाला मानसिंह।

ले पीठपर निज वीर स्वामी को सहित अभिमान, यों
अति वेग से वह जा रहा था दिव्य वायु विमान ज्यों॥

२४

वे खुरासानी और मुलतानी सवार लुके, छुके,
करते गमन थे सिंह पीछे ज्यों शृगाल रुके, रुके।
रणक्लान्त थे राणा तथापि सतर्क थे पथ में महा!
मौका अतः आक्रमण का थे वे न पा सकते वहाँ॥

२५

आगे पड़ी छोटी नदी, चेतक फलाँग गया उसे,
पर यवन-घोड़ों ने विचारा कार्य एक नया उसे।
वे रुक गए, पर तीर राणा पर गए छोड़े वहीं।
पर भाग्य वशतः तीर राणा को लगे रिपु के नहीं॥

२६

दो बाण पीछे से लगे आ उन सवारों को वहाँ,
"रे भ्रातृघाती! ज्ञात है तुम को न क्या मैं हूँ यहाँ।
असहाय, घायल शत्रुपर छिप कर चलाना बाण क्या?
रे! यवन कुल में है यही वर-समर-नीति विधान क्या?"

२७

यों दो सरों से भेद उनको "शक्ति" ने उनसे कहा
यह श्रवण करके उन सवारों से न मौन गया रहा:—
"तुम हो हमारी ओर फिर यह कर रहे क्या काम हो?
"सोचो, विचारो तो न क्या तुम शक्ति! नमकहराम हो?"

३८

रे नीच यवनो ! यदपि हूं मैं अब तुम्हारे पक्ष में
है विमल क्षत्रिय रुधिर बहता किन्तु मेरे वक्ष में ।
अन्याय से आक्रमण होते पूज्य अग्रज पर यहा !
मैं शक्तिसिंह खड़े खड़े किस हृदय से देखूँ यहाँ !

३९

अग्रज पुनः राणा पुनः वर-वीर-रक्षा भी अहा !
है जब कराल कृतघ्नता तो पुण्य है फिर क्या यहाँ ?
क्या जन्मभूमि तथैव अपने भूप को देना भुला
है पुण्य-पुञ्ज कृतघ्नता निज रूप को देना भुला ?

४०

यदि अन्न खाकर चारदिन मैं आज अकबरशाह का,
बनता पथिक अग्रज निधन की पाप पूरित राह का,
रे नीच यवनो ! दानवों सा निठुर करता काम मैं
होता तुम्हारी धारणा में तब न नमकहराम मैं ?

४१

पय-पान जननी का किया है किन्तु जिनके सङ्ग मैं,
है एक ही जब रुधिर दोनों के सुपावन-अङ्ग में,
होता, न करता भूप-भ्राता को स्वरिपु से त्राण मैं
तो मातृद्रोही, भ्रातृद्रोही, देशद्रोही क्या न मैं ?

४२

है वैर राणा से हमारा हम इसे हैं मानते

सचमुच उन्होंने है तजा हमको, सभी तुम जानते।
पर वैर-शोधन के लिए ऐसा समय होता नहीं,
हैं नीच वे जो विपद में निज बन्धु को तज दें कहीं॥

४३

यह कह निधन कर उन मुगल सर्दार दोनों को वहाँ
जाने लगे उस ओर शक्ति; प्रताप थे जाते जहाँ।
सहसा हुआ यह शब्द "नीला घोड़रा असवार हो* ।"
यह सुन प्रताप मुड़े वहीं तत्काल व्यग्र अपार हो॥

४४

देखा उन्होंने अनुज को, उसकी अलौकिक भक्तिको,
चिरकाल से बिछुड़े हुए अपने परम प्रिय शक्ति को।
हो हर्ष से गद्गद तथा शुचि प्रेम के आँसू बहा,
निज अनुज को भुज भर प्रसिद्ध प्रतापने भेंटा अहा!

४५

इस जगह पर ही तक "चेतक" का गया खोला जहाँ,
वह स्वामिभक्त प्रसिद्ध हय बस गिर पड़ा भू पर तहाँ।
वह शक्ति और प्रताप के सम्मुख गया सुरलोक को,
हय हानि से हा! हा! हुए वे प्राप्त अतिशय शोक को॥

४६

"औंकार" नामक अश्व अपना शक्ति ने दे भ्रात को,
फिर गमन पैदल ही किया अपने शिविर विख्यातको॥

---

* हो नीला घोडारा सवार हो

इस ओर राणा शीघ्र ही पहुँचे सुरक्षित स्थान में,
पर मान भाला की बनी चिन्ता घनी थी प्राण में॥

४७

उस ओर भाला मानने अद्भुत दिखाते वीरता,
विध्वंस की निज शत्रुओं की गर्व संयुत धीरता।
पर एक थे वे ठहरते कब तक यवन दल बीचमें
कब तक जलेगा दीप एक महा मरुत बल बीचमें।

४८

बाइस सहस्रों में निदान सहस्र केवल आठ ही
जीवित रहे क्षत्रिय, मरे अवशेष सब योद्धा वहीं।
विख्यात भाला मानसिंह उदार त्यागी धीरने
सम्मुख समरमें प्राण तजते यह कहा उस वीरने:—

४९

"मैं उऋण होता आज हूँ हे जननि! तेरी धार*से
तू शान्ति दे निज क्रोड़†में मुझको ग्रहण कर प्यारसे।
हूँ धन्य, रक्षा भूपकी जो आज मुझसे हो सकी।
इस अधम सुतके योग से तू दुःख अपना खो सकी॥

५०

है जन्म मेरा सफल, मैं हूँ हर्ष से मरता यहाँ!
यह वन्दना तेरे चरण की हर्ष से करता यहाँ।
मेवाड़-गौरव-वीर राणा! भृत्य यह तेरा यहाँ,
कर्त्तव्य अपना पूर्ण करके स्वर्ग चलता है अहा!!

---

*धार = ऋण। †क्रोड़ = गोद।

प्रतापी प्रताप का प्रण।

१

चाहे कोई मान बेंच कर अकबरके पद चूमें,
चाहे कोई महाराज बन सिर पर छत्र धरा घूमें,
कुछ भी हो पर कुल-मर्य्यादा तज मैं विपथ न जाऊँगा,
ईश्वरके अतिरिक्त किसीको अपना सिर न नवाऊँगा,

२

चाहे वन्य-जन्तुओंके सँग वनमें रह कर दुख पाऊँ,
चाहे भील किरातोंके सँग कन्दमूल वन-फल खाऊँ,
चाहे मैं उपवास रहूँ, पर स्वाधीनता न त्यागूँगा।
ईश्वरके अतिरिक्त किसीको अपना सिर न नवाऊँगा॥

३

रिपुकी सेना लगी रहे निशि-दिन चाहे पीछे मेरे,
चाहे कपट कूट करते नित रहें शत्रु मुझको घेरे,
तो भी एक लिङ्गके बलसे अपनी टेक निभाऊँगा।
ईश्वरके अतिरिक्त किसीको अपना सिर न नवाऊँगा॥

४

चाहे बड़ी बड़ी पदवीको लालच कोई दिखलावे,

चाहे "तुझे चूर डालूँगा" यों कह मुझको धमकावे।
पर मैं हूँ न भीरु या लोभी जो प्रणसे डिग जाऊँगा,
ईश्वरके अतिरिक्त किसीको अपना सिर न नवाऊँगा॥

५

इस प्रकार भीषण प्रण करके जिसने उसको निर्वाहा,
कुल-गौरवके लिये किये जिसने अपने सब सुख स्वाहा।
मान बेंच भारत भरके नृप करते थे जिस समय विलाप
क्षत्रियत्व निज रक्खा जिसने, जय जय जय वह वीर-प्रताप!!

६

रङ्गमहल तजकर तरुओंके नीचे जिसने किया निवास,
खाँड़ खीर तज घासोंकी जड़ खाई, अथवा रहा उपास,
तृणसम राज-भोग-सुख तजकर, सहकर नित दारुणसन्ताप
क्षत्रियत्व निज रक्खा जिसने, जय जय जय वह वीर-प्रताप!!

७

हे भारतके गौरव केतन! स्वाभिमान के शुभ अवतार!
हे राजर्षि! स्वदेश-प्रेम-निधि, साहस-शौर्य्य-शक्ति-आगार
हे प्रताप! हे आत्मत्यागी, महाप्रतापी, धार्मिक, धीर!!
क्या कोई इस भरत-भूमिमें प्रकटेगा फिर तुझसा वीर?

८

यद्यपि है तू स्वर्ग धाममें हमसे लाखों योजन दूर
पर प्रताप! तव नाम श्रवणकर होते हैं कायर भी शूर।

जन्मभूमि मेवाड़ धन्य तव, सीसोदिया वंश तव धन्य,
जिनकी दिव्य शक्तिकी महिमा है भूतलमें अतुल अनन्य।

९

सोने चाँदी के थालों में यद्यपि भोजन करती हैं,
दुग्ध फेन वत् मृदु शय्यापर शयन मुदित मन करती हैं,
तोभी थालों पर पत्ते शय्या नीचे तृण रख सविधान,
प्रकटाती पैतृक-प्रताप अब तक प्रताप! तेरी सन्तान॥



अलौकिक धैर्य ।

१

न पास में साधन युद्ध के रहे,
था द्रव्यका भी नित ह्रास हो रहा,
योद्धा कुटुम्बी घटते चले सभी,
था धैर्य तोभी अचल प्रताप में ॥

२

विपत्ति दूनी दिन, रात चौगुनी
थी वृद्धि पाती नित भीम रूपिणी,
न बाल बच्चे पड़ शत्रु हाथ में—
जावें कभी, था इसका बना भय ॥

३

बँधे हुए पादप डाल में अहा !
व्याघ्रादि से रक्षण के लिये, लखो,
ये टोकरों में शिशुवृन्द झूलते
हैं रो रहे कातर भूख से हुए !!

४

"देखें भला भूप प्रताप क्योंकर

रक्षा सकेगा कर धर्म जाति की ?"
गर्वोक्ति ऐसी करती, असंख्यक
है शत्रु-सेना नित ताक में खड़ी ॥

५

चिन्ता नहीं है तब भी लखो ज़रा,
न धैर्य तोभी तजते प्रताप थे,
न भीतिसे है उनकी मुख श्री
मलीन होती, मुख सूखता नहीं ॥

६

है प्राप्त होता वन-अन्न जो कुछ,
निर्वाह ये हैं करते उसी पर।
कभी तृणों की जड़ की बनी हुई
रोटी कड़ी खा कर तृप्ति मानते ॥

७

बना हुआ है निज पास भोजन
पाते न खाने हित वे सुयोग हैं।
हैं खा रहे भोजन, आ गये रिपु,
छोड़ा उसे, युद्ध मचा दिया वहीं ॥

८

आपत्ति की यों विषमा दशा में
अधीर राणा न हुए कभी अहा !

प्रताप के साहस वीरतादि से
आश्चर्य दिल्लीपति को हुआ महा ॥

९

थे जानने के हित बादशाह ने
वृत्तान्त राणा प्रवर प्रताप के
भेजे स्वयं दूत अनेक जो रहे
वे थे वनों में फिरते छिपे छिपे ॥

१०

भेजे उन्होंने निज बादशाह को
थे यों समाचार प्रताप सिंह के :—
"प्रताप है आकर स्वाभिमान का
महोच्च आहा! उसका प्रताप है ॥"

११

जो प्राप्त होता फल मूल अल्प है,
सन्तोष से वे फिर बाँट बाँट के
खाते उसे हैं सब प्रेम-पूर्वक
हैं राजसी-रीति निभा रहे वही ॥

१२

ऐश्वर्य्यमें थी शुचि रीति जो भली
बर्त्ताव होता उसका अभी तक ।
विलोक होता मन में विचार यों
"चूमें पदों को चल के प्रताप के ॥"

१३

दोना फलों से वन के भरा हुआ
सर्दार राणा कर से प्रसन्न हो
सगर्व लेके अति तुष्टि मानते
खाते अहा! हैं दुख दैन्य भूल के॥

१४

* * * * *

है और तो क्या वर भाट एक था
दी थी जिसे हो पगड़ी प्रताप ने।
दिल्ली गया सो मुजरा निमित्त तो
ले हाथ में ली पगड़ी उतार के॥

१५

निर्भीक नङ्गे सिर बादशाह को
दर्बार में जा मुजरा किया अहा!
प्रताप सम्मानित भाट ने जहाँ
लगे उसे कारण पूछने सभी॥

१६

कभी झुकाया जिनने न शीश है
आहा! किसी को इस, मर्त्यधाम में
उन्हीं प्रतापी सुरथी, प्रताप की—
न और की है पगड़ी लखो यह॥

१७

कैसे उतारे बिन मैं इसे कहो
हाहा !! करूँगा मुजरा यहाँ पर
मैंने रखी इज्जत यों उतार के
प्रताप जू की पगड़ी पवित्र की ॥

१८

"सिवा महाप्राण अनन्त ईश के
नहीं झुकेगा यह शीश और को।"
प्रताप का यों सुन के महाप्रण
स्वयं हुए गद्गद् बादशाह भी ॥

१९

प्रतापके शत्रु हुमाँयु के सुत
लगे प्रशंसा करने प्रताप की
सारे नृपों से दरबार बीच में।
"प्रताप! है धन्य तुम्हें" हुई ध्वनि ॥

२०

उदार राजे सरदारवृन्द भी
लगे प्रशंसा करने प्रताप की :—
"तू आर्य्य-भू का तिलक प्रताप! है,
है धन्य मेवाड़-धरा पवित्र तू !!"

२१

विमुग्ध राणा-यश-राशि से हुआ

श्री खानखाना कवि ने वहीं पर
दोहा लिखा एक प्रताप सिंह को
था अर्थ ऐसा जिसमें भरा हुआ :—

२२

"राणा! भरोसा उस ईश पै रखो।
धरा तथा धर्म अमूल्य रत्न ये
दोनों रहेंगे तव नित्य ही बने।
लज्जा मिलेगी नृप! बादशाह को॥"

२३

है धन्य देवोचित धैर्य, साहस,
है धन्य वीरत्व प्रताप! आप का!
हों वीर ऐसे जिस जाति देश में
चारों युगों में वह पूज्य क्यों न हो!

धैर्य-परीक्षा ।

१

अकबर के षड़यन्त्र जालसे घिरे हुए यह वीर प्रताप,
सपरिवार हैं आज भटकते बन बन सहते नाना ताप ।
हाय! नहीं है उन्हें लेश भी निश्चिन्तता, न मनकी शान्ति,
आठों याम शत्रु आगम की उन्हें बनी रहती है भ्रान्ति ॥

२

रम्य राज प्रासाद तथा सब राजोचित सुख भोग बिसार,
कुल-गौरवकी रक्षा के हित दुख सहते ये विविध प्रकार ।
सम्मुख है दिन रात विषम तम यद्यपि आपत्तियाँ अनेक,
धन्य वीर राणा प्रताप! तुम हुए न तो भी विचलित नेक ॥

३

राजकीय शिशु जो अति सुखसे लालित पालित होते हाय!
विलप रहे हैं वही विपिन में क्षीण स्वर से रोते हाय!
व्याघ्र भेड़िये आदि हिंस्र पशुओं से रक्षित रखने काज,
देखो, तरुसे बँधे टोकरों पर रक्खे जाते वे आज ॥

४

बन की जड़ी बूटियों ही की बनी रोटियाँ ही दो चार,

इस कुसमय में रही मुख्य इन सब के जीवन का आधार।
किन्तु इन्हें भी स्वस्थ बैठ कर कभी न वे खा पाते थे,
छोड़ भाग जाना पड़ता था ज्योंही रिपु आ जाते थे॥

५

पाँच दिनों तक उन्हें बराबर, रहते भी रोटी तय्यार,
समय हाय! मिल सका नहीं खाने को उसे एक भी बार।
छिपी हुई रिपु-सेनासे जब कुसमय में होते आक्रान्त,
भोजन त्याग भाग जाना वनमें था तब उपाय एकान्त॥

६

रानी राजवधूने दुखसे छटवें दिन होते ही भोर,
की प्रस्तुत रोटियाँ यत्नपूर्वक जङ्गल के अन्न बटोर।
कर लेने पर भाग, मिली जो सब को केवल ही एकेक,
आधी खाने लगी, छोड़ आधी आधी फिर की प्रत्येक॥

७

कोस रहे थे कर्म खोय, लेटे प्रताप भू पर कुछ दूर,
था उनका हृदाम विविध विध दुश्चिन्ताओं से भरपूर।
इसी समय सुन पड़ा उन्हें अति करुण-एक दुख-क्रन्दन पास,
अतः वहीं सम्भ्रम उठ कर वे गये अनिष्ट सोच सत्रास॥

८

पूछा फिर जब हेतु उन्होंने विदित हुआ तब यह सब हाल,
"राजकुमारी की रोटी ले भगा एक वह वन्य-विडाल।

"कारण यही बालिका जो यों करुण-कण्ठसे रोती है,
"क्षुधा-ज्वाल सह और न सकती विकल बड़ी ही होती है॥"

९

उदित-प्रताप प्रताप उदयपुर-राणा जिसके पिता प्रवीर!
टुकड़े भर रोटी के हित हो आज वही इस भाँति अधीर!!
वक्र काल-कौटिल्य, भाग्य का फेर पाठको! देखें आप,
और कौन सा हो सकता है इससे बढ़कर के अनुताप?

१०

है विपत्तियों की यह सीमा, है अनुपम दृढ़ता का अन्त!
है यह अन्तिम धैर्य्य-परीक्षा, है सत्कृति में विघ्न दुरन्त!!
निज कुल-मर्य्यादा हित दुख यों सह सकती जिसकी सन्तान
धन्य धन्य मेवाड़-भूमि वह बन्दनीय गुण-गौरव-खान!!

स्वामी-भक्त मन्त्री।

१

त्यागे स्वाधीनता के हित विभव सभी
सौख्य साम्राज्य भोग,
होके अत्यन्त घोर व्रत-रत, करते
मान रक्षार्थ योग।
सम्बन्धी सैन्य ले के बन बन फिरते
सिंह तुल्य प्रताप
बाधाएँ देख आगे अति विषम, हुए
शोक-सन्तप्त आप॥

२

बोले वे एकदा यों बचन दुख पगे
चित्तमें खेद पाके :—
योगी को भ्रष्ट मानों अहह! कर रहे
सिद्धिमें विघ्न आके :—
"होता क्या धार्मिकोंको दुख अमित विभो!
नित्य ही है उठाना?
"होता क्या धार्मिकोंको मरण तक नहीं
सौख्य या शान्ति पाना?

३

"ऐसा है जो नहीं तो पलपल दुख क्यों
भोगता है प्रताप !
"क्या मैंने जो न बेंची निज कुल-गरिमा
तो किया घोर पाप ?
"जाता है रूठ धाता जब, विफल सभी
यत्न होते नितान्त,
"लेने आता, मनस्वी नर ! फिर न तुझे
शीघ्र हो क्यों कृतान्त ?

४

"हा ! ऐसे सङ्कटोंमें गति विपिन बिना
और भी है कहीं क्या ?
"ऐसे दुर्भागियों को विजन बन बिना
ठौर भी है कहीं क्या ?
"हो जावे क्यों न मेरे तन धन जन की
और सर्वस्व हानि,
"रक्खूँगा मैं प्रतिष्ठा स्वपितर गण की
छोड़के आत्म-ग्लानि ॥

५

"जाती है जो न त्यागूँ जननि ! अब तुझे,
दुर्लभा धर्मनिष्ठा,

"जाती है जो त्यागूँ तव चरण सभी
पूर्वजों की प्रतिष्ठा।
"रक्षा सत्कीर्ति की है उचित स्वकुल की
नित्य ज्ञानी नरोंको।
"होता है प्राणसे भी प्रिय अधिक सदा
मान मानी नरों को॥

६

"जाते संसार में हैं दिन सकल नहीं
एकसे ही किसी के।
"देते हैं धैर्य्य मातः कुछ कुछ मुझको
तत्व नीके इसी के।
"जो जीता मैं रहा तो फिर पद युग ये
अम्ब! आके गहूँगा।
"जाता हूँ मैं प्रतिष्ठा हित निज कुलकी
कन्दरों में रहूँगा॥

७

"मैं, हे मेवाड़ माता! अधम-तनय हूँ
दुःख का मूल, तेरा
"सेवा तेरे पदों की कुछ कर न सका,
और मैं, दैव-प्रेरा!
"तू, मा मेवाड़ लक्ष्मी! पद-दलित हुआ!
शत्रु से व्यर्थ होगी।

"वीराम्बा ! पुण्यभूमि ! प्रकट यवन के
पापकी अर्थ होगी ॥"

८

यों वाणी शोकपूर्णा कह नयन युगों
में भरे दिव्य नीर
ले के मेवाड़-भू की रज कर उससे
शुद्ध सारा शरीर ।
कन्या पुत्रादिकोंके सह, कर जननी
वीर भू को प्रणाम,
राणा वीर प्रताप व्यथित चित चले
त्याग मेवाड़-धाम ॥

९

जाती जैसे सदा ही जय अनुपद है
धर्म के नीति-युक्त,
पीछे पीछे चली त्यों स्वजन-सुभट की
मण्डली प्रीति-युक्त ।
धीरे धीरे सभी वे उतर कर चले
अर्वली शर्य-लोक
सिन्धु प्रान्तस्थ पुण्य-स्थल वर मरु-भू-
-में हुए प्राप्त ठीक ॥

१०

"राणा मेवाड़-स्वामी अहह ! कर रहे
आज हैं देश त्याग,
वंशख्याति प्रतिष्ठा हित दुख वन के
ले रहे सानुराग।"
पाते ही हृद मन्त्री वह वणिक, अहो !
वृत्त ऐसा दुरन्त
घोड़े पै हो सवार प्रखर गति चला
"शाह भामा" तुरन्त ॥

११

जाते जाते उठे यों वणिक हृदय में
आप ही भाव नाना :—
क्यों जाते हैं कहाँ, हो विवश ? पड़ गये
लोभ में तो न राणा ?
आशा तो है न होगी इस तरह उन्हें
वीरता से विरक्ति !
है आर्यों की प्रतिष्ठा अविचल उनकी
आत्मदा आत्मशक्ति !!

१२

"हा ! अर्थाभाव ही के हित नृप तजना
चाहते हैं स्वदेश !"

ऐसा मैंने किसी को उस दिन कहते
था सुना हाय! क्लेश!
हिन्दू-सूर्य प्रतापी प्रखरतर कहाँ
शक्तिशाली प्रताप!
पीड़ा-ब्रीड़ा प्रपूर्ण प्रबल अति कहाँ
निन्द्य अर्थाभ्रताप!!

१३

जो ऐसी ही अवस्था इस समय हुई
प्राप्त आके कदापि,
तो तू स्वाभाविकी रे! वणिक-क्रपणता
चित्त! लाना न, पापी!
हे हे मेवाड़-माता! बल अनुपम तू
दे मुझे आज ऐसा,
सेवा में त्याग-युक्त प्रकट कर सकूँ
वीर सत्पुत्र जैसा॥

१४

जो तू आधीन होके यवन नृपति के,
क्लेश नाना सहेगी;
तो क्या आधीनता, ज्यों अनल न हमको
नित्य ही मा! दहेगी?
खोके स्वातन्त्र रूपी मणि हम दुख के
घोर काली निशा में

जावेंगे क्या न हा ! हा ! तज कुल गरिमा
मृत्यु ही की दिशा में !!

१५

जो श्री-मेवाड़-भू के शुचि तर कुलके
गर्व का कीर्ति-केतु
जावेगा टूट,—तो क्या फिर धन जन, तू
सोच, हो लाभ हेतु ॥
ले लेंगे क्रूरता से हर कर रिपु जो
सौख्य की वस्तु सारी,
मारे मारे फिरेंगे तब हम मधु की
मक्षिका ज्यों दुखारी ॥

१६

जावेगी मातृ-भू जो निकल कर कभी
हाथ से हा ! हमारे
तो क्या निर्जीव प्राणी सम हम सब हैं
व्यर्थ ही प्राण धारे।
ऐसा होने न देंगे प्रण कर, अपने
प्राण का दान देके,
होंगे सेवा चुकाते अमर, निहत हो
युद्ध में कीर्ति लेके ॥

१७

आवेगा काम तेरा कब वह धन हा!
रे कृतघ्नी कठोर!
भामा! धिक्कार लाखों तव धन बल को
निन्द्य रे नीच घोर!
भामा ने यों स्वयं ही कटु-वचन कहे
खेद पाके अपार,
आँखों से छूटने त्यों अहह! फिर लगी
रक्त पूर्णाम्बुधार॥

१८

स्वामी को शीघ्रता से बन बन फिरता
ढूँढ़ता शाह भामा
पाता अत्यन्त पीड़ा लख गति नृप के
कर्म की हाय वामा!
सिन्धु-प्रान्तस्थ सीमा पर जब पहुँचा
तो वहाँ दूर ही से,
देखा सम्बन्धियों के युत नरवर को
खिन्नता त्याग जी से॥

१९

घोड़े से भूमि पै आ धर कर हय की
रास मन्त्री चला यों

माता मेवाड़-भू ने स्वसुत निकट को
दूत भेजा भला ज्यों
जाके मेवाड़-मौर प्रभुवर-पद पै
शीश मन्त्री झुकाके
बोला यों नम्रता से नयन-युगल से
शोक-आँसू बहाके:—

२०

हो जावेगी अनाथा प्रभुवर! जननी-
जन्मभूमि प्रसिद्ध,
त्यागेंगे आप यों जो कुसमय उसको
हो विपत्यास्त्र-विद्ध !!
राणा के चित्त में यों विषम विषमयी
क्यों हुई आत्मग्लानि ?
घेरे संसार को आ जलद-पटल तो
सूर्य को कौन हानि ?

२१

योद्धा थे साथ में, थे धन जन, न रहा
साधनों का अभाव,
मन्त्री! मैंने दिखाये तब तक अपने
क्षात्र-शक्ति प्रभाव।
हो कैसे भोजनों का दुख जब हमको
सालता रोज हाय!

रक्षा वंशप्रतिष्ठा तम अब अपनी
है कहो, क्या उपाय ?

२२

रोते हैं राजपुत्र क्षुधित दुखित हो
अम्ब की ओर देख
छाती जाती फटी है तब इस शठ की
हाय ! रे कर्म-रेख !!
ऐसी दीना दशा में कब तक रिपुसे
युद्ध हाहा ! करूँगा।
क्या श्री स्वाधीनता को अकबर-कर में
सौंप खाहा करूँगा ?

२३

पीछे पीछे सदा ही अहह ! फिर रही
शत्रु-सेना, हमारे
धीरे धीरे कुटुम्बी सुभट हत हुए
युद्ध में हाय ! सारे।
सामग्री एक भी है समर हित नहीं
पास में और शेष
भागी भागी प्रजा भी सभय फिर रही
भोगती घोर क्लेश !!

२४

हे मन्त्री! सामना मैं कर अब सकता
शत्रुओं का न और,
जाता हूँ मातृ-भू को तज कर इससे
दुःख से अन्य ठौर।
मेरी प्यारी प्रजा को अमित सुख मिले
नित्य मेरे निमित्त,
लोभी खानन्ध्र रूपी वह अहह नहीं
पा सके श्रेष्ठ वित्त!!

२५

क्या ही निश्चिन्तता से भय तज रिपु का
सिन्धु के पार जाके,
मैं हे मन्त्री! रहूँगा सुख सहित नया
रक्षित स्थान पाके।
मेवाड़ोद्धार हेतु प्रमुदित करके
राज्य की स्थापना मैं
भीलों का सैन्य लूँगा अगणित धन के
साथ ही मैं, बना मैं॥

२६

व्रीड़ा-पीड़ा-निराशा-भरित वचन ये
भूप के वृद्ध मन्त्री

शोकार्त्त हो गया हा ! श्रवण कर, गई
टूट सी प्राणतन्त्री।
पैरों में वृद्ध मन्त्री गिर कर उनके
वृक्ष छिन्ना लता ज्यों
श्री राणासे लगा है तब फिर करने
नम्र हो प्रार्थना यों

२७

स्वामी हो आप नामी इस अनुचरकी
देह के, अन्नदाता,
खाया है अन्न मैंने तव, अब तक हूँ
आपका अन्न खाता।
है सारा देहका जो रुधिर वह बना
अन्न से आप ही के
स्वामी हो आप मेरे तन धन जनके
भूमि भारा सभी के ॥

२८

मेरा सर्वस्व ही है तन सहित प्रभो
भूपते ! आप का ही
भागी हूँगा न दूँ जो तन धन नृपके
हेतु, मै पाप का ही।
जूता मैं श्रीपदों के हित यदि बनवा
देह की चर्म से दूँ,

तो भी है हाय ! थोड़ा यदि तव ऋणको
मूढ़ मैं धर्म्म से दूँ ॥

२९

है हो क्या शक्ति ऐसी प्रभुवर मुझमें
दे सकूँ जो सहाय !
सिंहों को गीदड़ों से कब विपद घटी
बोलिये, हाय ! हाय !!
तो भी है पास मेरे कुछ धन जिसको
सौंपता आप को मैं
पाके सो भूप ! लौटें, नहिं सह सकता
मातृ-भू ताप को मैं ॥

३०

कीजे रक्षा प्रजा की इस धन बल से
देशकी जाति की भी
कीजे हे भूप ! रक्षा इस धन बलसे
वंशकी ख्याति की भी।
होगी सर्वेश की जो अतुलित करुणा
बात सारी बनेगी,
जीतेंगे शत्रुओं को, विषम विपद ये
शीघ्र सारी कटेंगी ॥

२१

जो आया काम स्वामी! यह धन, अपनी
देश-रक्षा हितार्थ,
हो जाऊँगा सवंश, प्रभुवर ऋण से
छूट के, मैं कृतार्थ॥
हूँ राणा! वैश्य तो भी यदि बल रहता,
वृद्ध होता नहीं मैं,
तो लेके खड्ग जाता समर-हित जहाँ
शत्रु होते वहीं मैं॥

२२

मन्त्री हूँ, वृद्ध हूँ मैं, अनहित न कभी
मैं करूँगा नरेश!
होगा क्या दुःख भारी डर कर रिपुको
त्यागने से स्वदेश!
हे स्वामी! लौटिएगा स्वपितर गणका
सोच के स्वाभिमान,
जाने दूँगा कहा! मैं प्रभुवर! न कभी
आपको अन्य स्थान!!

२३

देखो तो जन्म-भू है रुदन कर रही
हा! हतज्ञान होके,

भक्ति-श्री बुद्धि-विद्या-रहित बन हुई
आपको आज खोके
माता को दुःख रूपी अगम जलधि में
मूर्छिता छोड़ जाना,
बोलो तो क्या यही है ऋण इस कलिमें
पूर्णता से चुकाना ?

३४

बोले यों बात सारी सुन स्वसचिव की
वीर श्रीमान् राणा
हा ! मा मेवाड़ भूमि ! मृतक समझ के
तू मुझे भूल जाना।
जो नाना आपदाएँ नित नव तुझ पै
एक से एक आईं,
मेरी ही मूर्खता से अहह ! सकल ही
वे गई हैं बुलाईं॥

३५

मन्त्री की स्वामिभक्ति प्रकट लख तथा
देखके आत्मत्याग,
बोले राणा प्रतापी वचन वर पुनः
तुष्ट हो सानुराग :—
"मन्त्री पा हो गया मैं सुचतुर तुम सा
आज भामा ! कृतार्थ

भेजा क्या मातृ-भू ने चर * कर तुम को
देश-रक्षा-हितार्थ !!

२६

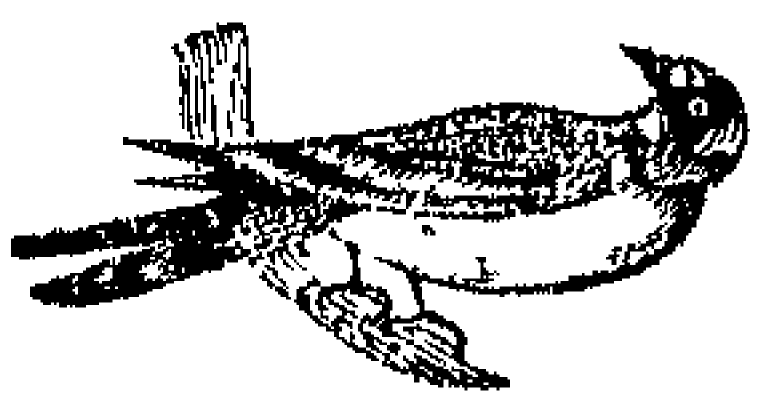
लौटे राणा वहीं से परिजन सह, ले-
साथ में मन्त्रिराज,
जानेसे यों बचायी सचिव-सुमति ने
आर्य-भू-लाज आज।
पूजा के योग्य तू है वणिक सचिव श्री-
शक्ति की मूर्ति तू है !
है आहा ! धन्य तेरा, वह धन, जननी-
भक्ति की मूर्ति तू है !!

२७

इतना था वह धन तब, हो सकता था जिससे, भामाशाह !
बारह वर्षों तक पचीस हज़ार मनुष्यों का निर्वाह।
तुझ से स्वामी-भक्त चतुर मन्त्रीवर आत्मत्यागी वीर
भारत में क्या दुर्लभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर॥

---

* दूत बनाके



कृष्णाकुमारी।

१

है यह घिरी चित्तौर में क्यों दुख घटा घन घोर ?
क्यों छा रहा है आज ऐसा विषम भय चहुँ ओर ?
हतबुद्धि हो नर ले रहे क्यों हाय ! दीर्घ स्वास ?
मेवाड़-माता हो रही क्यों इस प्रकार उदास ?

२

हैं इधर जयपुर अधिप श्रीयुत् जगतसिंह नरेश,
हैं उधर राजा मानसिंह प्रसिद्ध जोधपुरेश।
ले साथ में सेना विपुल ये रोक दुर्ग-द्वार,
मेवाड़ के विध्वंस का हैं कर रहे कुविचार॥

३

ये उभय राजा साथ ही हो राजमद से अन्ध,
राणा-सुता से चाहते हैं व्याह का सम्बन्ध।
प्रत्येक कहता है "मुझे दें जो न कन्या-दान,
राणा, समझ लें फिर नहीं है आपका कल्यान !"

४

ले साथ अपने कुटिल निर्दय यवन-सैन्य अपार,
मेवाड़ चढ़ आया प्रसिद्ध अमीरखाँ सरदार।

दो शत्रु थे ही, तीसरा यह और पहुँचा एक,
आती कुदिनमें विपद हा ! हा !! एक साथ अनेक ॥

५

वर सुन्दरी कृष्णाकुमारी "कमल राजस्थान का,"
अप्राप्त वह मुझको रही तो विषय है अपमानका।
देखें भला राणा-सुता का व्याह कर, राठौर तू !
निज भवन कैसे जा सकेगा त्याग कर चित्तौर तू !

६

जयपुर पराजयपुर बनेगा समझ ले, कछवाह तू !
घर लौट जा ले प्राण, तज राणा-सुता की चाह तू !
मत मानसिंह महीप से हठ युत लड़ाई ठान तू !
मत आपही निज मृत्युको इस भाँति कर आह्वान तू !

७

हैं सेंधिया द्वारा निकलवा दूत जो तेरे दिये
चित्तौर से हमने, हमारा क्या हुआ तेरे किये ?
तू साथ क्या न अमीरखाँ के जोधपुर में जा चढ़ा ?
पर प्राण लेकर घर भगा, कुलमान तू अपना बढ़ा ॥

८

यों एक ही कुल के प्रकट कलहाग्नि कर दो वंश
करने चले मेवाड़ रूपी वीर-वनको ध्वंश।
अति प्रबल मारुत तुल्य यवन अमीरखाँ दे योग
करने लगा पर—अहित-हित निज कुटिल शक्तिप्रयोग ॥

९

धन-पाश से हो बद्ध जोधपुरेश द्वारा हाय!
यह क्रूर यवन अमीरखाँ रच रहा घृणित उपाय।
बलहीन लख मेवाड़पतिको है दिखाता त्रास;
है स्वान भी पा समय करते सिंह से परिहास॥

१०

"राणा! कुशल निज चाहते हो तो करो यह काम,
"फिर अन्यथा होगा विषम इसका दुखद परिणाम।
"या तो सुता दो मानसिंह नरेश को विधियुक्त
"या बध सुता का कर स्वयं होओ विपदसे मुक्त॥

११

"यह हुक्म वीर अमीरखाँ का जो न होगा पूर्ण,
"सच जान लो मेवाड़-भू बस हो गई फिर चूर्ण।
हैं साथ मेरे अति भयानक लक्ष योद्धा क्रूर
"सङ्केत पाते वे करेंगे गेह गढ़ सब धूर॥"

१२

हतबुद्धि हा! मेवाड़पति श्री भीमसिंह * नरेश हो,
चिन्ता विविध विध कर रहे कैसे विगत यह क्लेश हो।
हे एक लिङ्ग! उपाय अब है क्या? हुआ असहाय मैं!
है लाज जाती पूर्वजोंकी, अधम हूँ अति हाय मैं!

* सन् १७७८—१८२८

१३

हे पूर्वजो! हा, हो रहा मेवाड़-गौरव अस्त है।
तजकर हमें जा रहे औ, स्वातन्त्र्य, शक्ति, समस्त हैं।
थे बन्धु जिनको मानते हम वे बने रिपु आज हैं।
हा हन्त! स्वार्थी मानवोंको कुछ न रहती लाज है॥

१४

मेवाड़! तेरी यह दशा हा हा!! मुझे धिक्कार है,
हे मातृभूमि! कठिन अब इस दुःख से उद्धार है।
निज गर्भ में मेवाड़-भू! इस अधम सुतको धार तू!
हा हा! हुई दुख दुर्दशासे ग्रस्त विविध प्रकार तू!

१५

सीसोदिया-कुल-सूर्य वीर प्रताप उदित प्रताप,
निज मातृ-भू की यह दशा क्या देखते हैं आप?
हे राजसिंह महीप अनुपम मातृभक्त उदार,
इस दुःखसे आकर करो मेवाड़ का उद्धार॥

१६

जिस रत्नके हित यत्नकर अकबर थका आजन्म,
जिस वीर मस्तक को न वह नत कर सका आजन्म,
अति विषय, मत्सर, द्वेष, आपस की कलह, छल, पाप,
हैं सौंपते उस रत्न को ले यवन कर में आप!!

१७

क्या अब नहीं है रक्त हम में पूर्वजों का लेश

जो हो रहा सीसोदियों पर यवन का आदेश?
होता न हम में एकता का जो विशेष अभाव
तो क्या दिखा सकता यवन यह आज स्वीय प्रभाव?

१८

कृष्णा! हुए तेरे लिये दो भूप प्रार्थी साथ,
किसका करूँ मैं मान, अब किसका कटाऊँ माथ।
किस हृदय से मैं आत्मजा का बध करूँगा आप!
है दोष क्या तेरा कहा! तू है सुते! निष्पाप!!

१९

इस भाँति राणा कर रहे हैं आत्मनिन्दा चित्त में
है घोर अपयश लग रहा स्वाधीनता के वित्त में।

* * * *

पर यवन के आदेश को कर श्रवण यह कर्कश कथा
वाचक, न समझे आप कृष्णाको हुई होगी व्यथा!

२०

वह वीर वंशोद्भव स्वयं थी वीर बाला षोड़शी
पर वीरता उसकी नसोंमें धीरतायुत थी धँसी।
फिर वह भला अस्थिर कभी इस बातसे होती कहीं?
है मृत्यु से भी वीर क्षत्राणी कभी डरती नहीं।

२१

यद्यपि अवस्था अल्प थी, निज जननि प्राणाधार थी,
कोमल कमलके कुसुम सम सुकुमारसे सुकुमार थी।

पर धैर्य्य साहस में बड़ों से भी अहा ! बढ़ कर रही,
सुकुमारतामें ही अतुल दृढ़ता अहा ! उसने गही॥

२२

निज देश रक्षाके लिये निज देहका तज ध्यान,
निज देश रक्षा के लिये निज गेह का तज ध्यान,
निज देश रक्षा के लिये पति-स्नेह का तज ध्यान,
कृष्णाकुमारी कर रही यह हर्षयुत विष-पान॥

२३

जननी अभागिन देख कर निज सुता का यह हाल,
वात्सल्यवशत: रो रही है हो विकल बेहाल।
निज अङ्ग से कोमल कमल को देख होता छिन्न,
उसके विरह से क्या न मञ्जु मृणाल होता खिन्न?

२४

पर कह रही कृष्णा धराते धैर्य्य माँ को खोय,
"यह मरण है, जननी! कदापि न सोचनीय मदीय!
"तू रो न गद्गद कण्ठ से मेरे लिये अब और,
"मुझ पापिनीके हित विपद सहती विपुल चित्तौर!

२५

"निज मृत्यु द्वारा हरण कर निज मातृ-भू का क्लेश,
"मैं पा रही हूँ अमरता होते कृतार्थ विशेष।
"होगा निरापद शीघ्र अब मम परमपूज्य स्वदेश,
"मैं धन्य हूँ, है, जननि! मेरा पूर्व पुण्य अशेष!!

२६

"है धन्य उसका जन्म जिससे देशका कल्याण हो।
"है धन्य वह निज धर्म हित जिसका बिसर्जित प्राण हो।
"निज तात को देना सदा सुख, धर्म है सन्तानका,
"रखती सदा है ध्यान सन्तति तात के कल्याणका।

२७

"रक्षा मुझे तो ध्येय है अपने पिता के मानकी,
"सुखको न मुझको चाह है, चिन्ता नहीं निज प्राणकी।
"इस बिपदसे अपने पिताको मा! करूँगी त्राण मैं।
"उनके लिये निर्भय हृदय हो दान दूँगी प्राण मैं॥

२८

"लाखों नरोंके सिर कटाने की अपेक्षा शान्ति से,
"यों मुक्त होना श्रेष्ठ है दुखशोकमय भव-भ्रान्ति से।
"तुझ बीरमाता की न मैं क्या बीर कन्या हूँ अहा!
"कर्त्तव्य पालन में मुझे इस लोक में है भय कहाँ?

२९

"तू रो न मा! मेरे लिये चिन्ता न कर अब लेश,
"तज सोच, मुझको धैर्य धर, दे मुदित चित आदेश।
"हे जनक! हे हे जननि! लो यह मम सभक्ति प्रणाम,
"अब ले रही है तव अधम यह सुता चिरविश्राम!!

३०

"क्षत्राणियो! मेवाड़वासिनि, दो मुझे आशीश,

"मेवाड़ में ही जन्म दें फिर भी मुझे जगदीश।
"हे मातृभूमि! दे मुझे अपनी अलौकिक भक्ति,
"निज देश-सेवा हित रहे मुझमें बनी यह शक्ति।"

२१

ये बचन कह 'रज' मातृभू की शीश पर निज धार
विष-पान कृष्णाने किया कह "जयति जय मेवार।"
उत्तर प्रतिध्वनि ने दिया कह "जयति जय मेवार,"
घोषित जयध्वनि ने किया मेवार का उद्धार॥

२२

कृष्णा! तुझे है धन्य, तेरा धन्य विमल चरित्र,
है धन्य तेरी यह अलौकिक पितृभक्ति पवित्र!
है धन्य तेरी शक्ति अनुपम देश-भक्ति ललाम,
संसार में कल्पान्त तक है अमर तेरा नाम॥

२३

आदर्श गौरव-गेह है तू भव्य भारतवर्ष का,
तू स्थान है सीसोदियों के गर्व-संयुत हर्ष का।
क्या वस्तु इस विषपात्र के आगे सुधा का भाण्ड है?
कृष्णा! अतुल इस जगतमें यह वीरता का काण्ड है!!

२४

यह जाति देश-हितैषिता तेरी अपूर्व अनन्य है,
है नाम तेरा अमर, तू कृष्णाकुमारी धन्य है।

तुझसी जहाँ जिस देश में वर वीर बाला जात हो,
वह क्यों न इस संसार में बन्दित तथा विख्यात हो ?

२५

लावण्यनिधि! रतिमान मोचनि! पद्म राजस्थानका!
मर्दन किया तूने स्व पैतृक रिपु गणों के मान का।
अल्पायु ही में तू गई हा! यदपि अमरागार को
पर कर गई तू सौरभित निज सुयश से संसार को॥



राणा संग्राम सिंह *

१

मुगल बादशाहत क्रम क्रम से नष्ट हो रही थी जब, भ्रात !
राणा श्री संग्राम सिंह तब हुए उदयपुर-पति विख्यात।
अपने पूज्य पूर्वजों के सम ये भी थे वर वीर महान,
रणवङ्का, निर्भीक, चतुर, नीतिज्ञ, प्रजाप्रिय सद्गुणखान।

२

प्राणोपम निज प्रजापुञ्ज का प्रतिपालन वे करते थे,
पुत्र-तुल्य रख उन्हें, यत्न से वे उनके दुख हरते थे।
कर सकता था प्रजावृन्द पर लेश न कोई अत्याचार,
निज निज धर्मों में रत थे सब नर नारी तज विषय विकार॥

३

किसी दूसरों के हाथों में सौंप राज्य का सारा भार,
था न पसन्द इन्हें नित करना नाना भाँति विलास-विहार।
शासन-कार्य्य स्वयं करते थे ये नित न्याय नीति अनुसार,
प्राणों से भी अधिक, प्रजा इनको रखती थी इन पर प्यार॥

४

कुटिल कर्मचारी पा करके बाग डोर शासन की आप

* सन् १७११—१७३२

दीन प्रजा पर दिखलाते हैं अपने पाशव-शक्ति-प्रताप।
इस अनिष्टकारिणी प्रथा के फल थे इनको पूरे ज्ञात,
विदित इन्हें था इससे होता लोगों पर जो जो उत्पात॥

५

अतः सतर्क रहा करते थे इन बातों पर ये दिन रात,
वेश बदल कर देखा करते ठौर ठौर जाकर सब बात।
प्रजा-पीड़कों को देते थे बड़े कड़े विधि-पूर्वक दण्ड,
नाम श्रवणकर इनका रिपुगण होते थे भयभीत प्रचण्ड॥

६

रख कर विविध गुप्तचर उन से गुप्त भेद करते थे ज्ञात,
निज कार्यों पर जाना करते प्रजा हृदय को सच्ची बात।
प्रजावृन्द की मति गति लख करते थे निज दोषों को दूर
मानों प्रजातन्त्र-शासन के ज्ञाता थे ये खुद भरपूर॥

७

धार्मिक, सहृदय, चतुर, शान्तचित, आत्मत्यागी, वर नीतिज्ञ,
कपट-रहित, गम्भीर, प्रजा के सुख-दुख-ज्ञाता, सज्जन, विज्ञ,
ऐसे ही मन्त्रीवर होते हैं नृप के मानों अर्द्धाङ्ग,
रक्खा था मन्त्री इनने ऐसा विचार कर साङ्गोपाङ्ग॥

८

उच्च-कर्मचारी के पद पर रखते थे न विदेशी व्यक्ति,
लूट, घूँस, या कपट-नीति से थी इनको सबकाल विरक्ति।

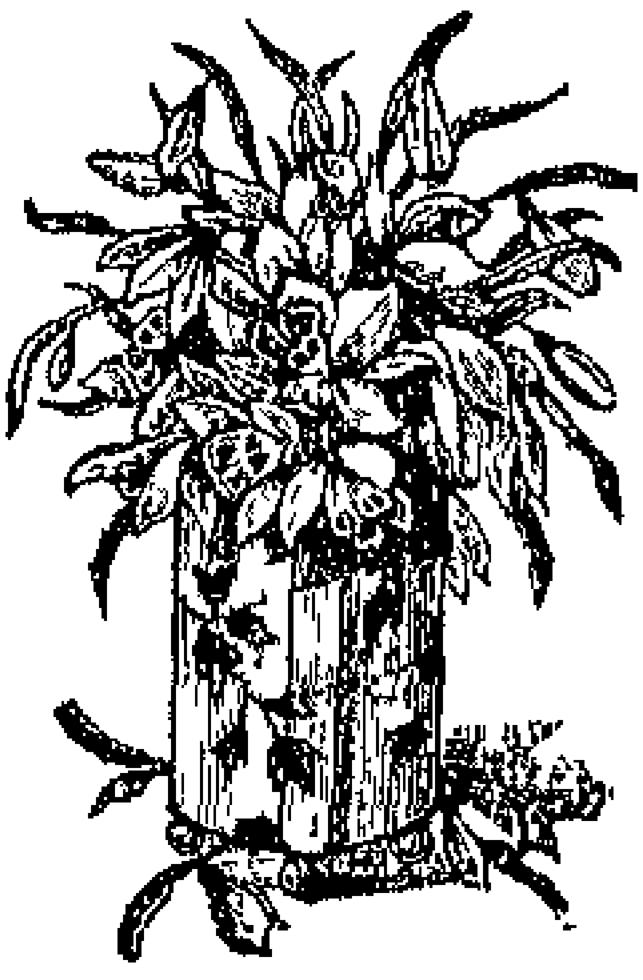
था कर दिया इन्होंने सब पर यह अपना सिद्धान्त प्रकाश
"कष्टोपार्जित-प्रजा-ग्रास हरने से उत्तम है उपवास॥"

९

"भीषण है निज प्रजावृन्द का असन्तोष नृप को सब काल,
"घिरा हुआ ही है ऐसे भूपों पर घोर दुःख का जाल।
"राज्य-वृक्ष की मूल प्रजा है, फल सम है उनका सन्तोष,
"प्रजातृप्ति से बढ़कर जग में और नहीं राजा का कोष॥

१०

"राज्य-वृद्धि से राज्य-शान्ति युत स्वतन्त्रता है श्रेष्ठ विशेष
"प्रजा-रुधिर के व्यर्थ बहाने से प्रिय है देशोन्नति लेश।"
धन्य धन्य ऐसे विचार के प्रजा-देश-हित-रत संग्राम!
धन्य "बिहारीदास" सदृश तव मन्त्री नीतिनिपुण गुणधाम॥



राणा सज्जन सिंह

और

बाबू हरिश्चन्द्र ।

१

पद्मराग के आकर में क्या काँच कभी होता उत्पन्न ?
सिंह सिंह ही है यद्यपि वह हो जावे अति विवश-विपन्न !
इस नीरसतायुक्त कृपणता के नव युग में भी चित्तौर !
बना हुआ है तू भारत की नृपति-मण्डली का सिरमौर ॥

२

है तेरे आदर्श सुतों का अनुपम आर्योजित औदार्य्य,
हो न कभी सकते अपरों से उनके तुल्य अलौकिक कार्य्य ।
विद्या-भूषित सत्कविता का आदर करने से सविशेष,
वन्दनीय सुर सदृश हो रहे राणा सज्जन सिंह नरेश ॥

३

‡"बाबू हरिश्चन्द्रजी ! समझो राज्य हमारा अपनो सीर"
धन्य धन्य ऐसी आज्ञा के देनेवाले भूपति वीर !
धन्य गुणग्राही श्री राणा सज्जन सिंह * सुकवि विद्वान
बिना आपके किससे कविका हो सकता ऐसा सम्मान ?

‡ आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ।

* सन् १८७४—१८८४

४

धन्य धन्य मेवाड़-भूमि! तू धन्य धन्य तेरे अधिराज!
सब प्रकार दुर्लभ हैं तेरे सुर दुर्लभ शुचि सुगुण समाज
धन्य धन्य यह विमल रसिकता, धन्य गुणग्राहकता दिव्य!
धन्य मातृभाषानुराग तव, धन्य काव्य-कवि-प्रियता दिव्य!

५

प्रतिमा-पूजा से बढ़ कर है प्रतिभा-पूजा परम पवित्र,
पाते हैं हम तुझ में इसका हे मेवाड़! प्रमाण विचित्र।
प्रतिभा-पूजा-रहित आधुनिक भारत की यह आरत भूमि,
तेरे ही सत्गुणों से फिर बन सकती है भारत भूमि॥

६

सत्कवि जो इस मर्त्यधाम में हैं स्वर्गीय सुधा के स्रोत
जो इस काल रूप सागर में हैं विख्यात सुयशके पोत,
जिनके काव्यों पर निर्भर है पतित जातियोंका उद्धार,
उनके गुणग्राही नृपवर ही हैं इस वसुधा के शृङ्गार॥

७

कवियों को लख अब के राजा लेते हैं जो लम्बी साँस,
कविता सुनने को मिलता है कभी नहीं जिनको अवकाश।
सत्कवियों को तुच्छ दृष्टि से देखा करते जो नर राज,
हो सलज्ज इस उदाहरण से सीखें वे कुछ शिक्षा आज॥

प्रताप-स्तव ।

१

स्वातन्त्र्य के प्रिय उपासक, कर्म्मवीर,
हिन्दुत्व-गौरव-प्रभाकर, धर्म्मधीर,
आत्माभिमान परिपूरित धैर्य्य धाम,
राणा प्रताप, तव श्रीपद में प्रणाम ॥

२

देशानुराग-वर-बान्धव-प्रेम-मूर्ति,
आत्मावलम्ब-अवतार, स्वधर्म स्फूर्ति,
राणाप्रताप जिनकी यश है ललाम।
है भक्ति-युक्त उनके पदमें प्रणाम ॥

३

आपत्ति में पड़ तथा दुख पा अनेक,
अन्यान्य सम्मुख सिवा जगदीश एक,
आजन्म शीश जिनने न कभी झुकाया,
दें वे प्रताप हमको निज बाहु-छाया ।

४

साम्राज्य धाम धनको अति तुच्छ जान,
त्यागे सभी सुख अहा! तृणके समान,

स्वातन्त्र्य हेतु सहते बनवास-क्लेश,
वे श्रीप्रताप हमको बल दें विशेष ॥

५

रक्षा निमित्त कुल-गौरवके विशुद्ध,
आजन्म स्वीय रिपु से कर घोर युद्ध,
रक्खी सगर्व जिनने निज टेक, अन्त,
दें वे प्रताप हमको दृढ़ता अनन्त ॥

६

वीरत्व देख मन में रिपु भी लजाते,
हैं हर्ष युक्त जिनके गुण-गान गाते।
हैं युद्ध-नीति जिनकी छल-छिद्र-हीन,
वे श्रीप्रताप हमको बल दें नवीन ॥

७

औदार्य्य में न जिनको मद गर्व लेश,
जो पा प्रभुत्व तजते न क्षमा विशेष,
जो धर्म-देश-हित हैं निज प्राणधारि,
वे श्रीप्रताप दुख दैन्य हरें हमारे ॥

८

"चाहे भले रह कुटी वन में बनाके,
"चाहे भले रह सदा फल मूल खाके,
"स्वाधीनता तज न तू बनदास, मूढ़ !"
धारे प्रताप ! यह भू तव तत्व गूढ़ ।

९

आपत्ति देख जिनका मुख हो न म्लान,
जो सौख्यमें न तजते प्रभु पाद ध्यान,
है मुक्ति मार्ग जिनका, बस मातृभक्ति,
दें वे प्रताप हमको निज दिव्य शक्ति ॥

१०

"चाहे हों रिपु लक्ष लक्ष अपने, हों एक चाहे हम,
धारेंगे तब भी न धर्म तजके, कापथ्य क्रीड़ा-क्रम ।
पाती नैतिक-वीरता जय सदा, पौलस्त्यहन्ता सम,"
वाणी वीर-प्रताप की यह हरे, सारे हमारे भ्रम ॥

समाप्त